International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(7): 92-94

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(7): 92-94
© 2015 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-09-2015
Accepted: 18-10-2015

डॉ. सरोज मेहता
व्याख्याता (संस्कृत), से.मु.मा.रा.कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सरोज मेहता
व्याख्याता (संस्कृत), से.मु.मा.रा.कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा, राजस्थान, भारत

अन्योक्तितरंगिणी का सांस्कृतिक मूल्यांकन

डॉ. सरोज मेहता

प्रस्तावना

कवि मथुराप्रसाद दीक्षित द्वारा रचित अन्योक्तितरंगिणी काव्य अन्योक्तियों का अनूठा संग्रह है। इस मुक्तक काव्य में दैनिक जीवन से संबंधित अनेक विषयों का अन्योक्तियों के माध्यम से विशद् रूप में विवेचन किया गया है। दीक्षित जी का यह काव्य अनेक दृष्टियों से उपयोगी एवं मुक्तक काव्य–विधा की अन्योक्तिमय सुन्दर रचना है। अन्योक्ति के माध्यम से कवि के वैयक्तिक अनुभव, विचार और भाव, सार्वभौम और सार्वजनीन हो जाते हैं। कवि जिन बातों को स्पष्टतया नहीं कह सकता, उन्हें वह अन्योक्तियों के सहारे सामाजिक प्रतिबंध, राजकीय भय और प्रतिकार की आशंका से मुक्त होकर व्यक्त कर सकता है। इस काव्य में भी कवि ने अन्योक्तियों के द्वारा लोकजीवन और मानवीय व्यवहारों को यथातथ्य प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार अन्योक्तितरंगिणी कवि की उर्वर कल्पनाशक्ति का पुंज ही नहीं है अपितु यह पुरातन सांस्कृतिक धरोहर को अक्षय प्रदान करने वाला छदयस्पर्शी काव्य है। कोई भी काव्य काल्पनिक होते हुए भी सत्य से परे नहीं होता। उसमें आंशिक सत्यता अवश्य विद्यमान रहती है। प्रस्तुत काव्य भी कवि की प्रखर प्रतिभा का प्रदर्शन करता हुआ, भारतीय संस्कृति की आत्मा का चित्रण करने में पूर्ण सक्षम है। अन्योक्तितरंगिणी काव्य सांस्कृतिक दृष्टि से कितना महत्त्वपूर्ण है ? इसका अनुमान हम इसमें चित्रित भारतीय संस्कृति और मानवीय स्वभाव के आकलन से भली–भाँति कर सकते हैं।

(अ) अन्योक्तितरंगिणी में भारतीय संस्कृति का चित्रण

भारतीय संस्कृति विश्व की सभी संस्कृतियों से अनूठी और प्राचीनतम जीवित संस्कृति है। मिश्र, चीन आदि की संस्कृतियाँ काल के विकराल थपेड़ों में समा गई किन्तु भारतीय संस्कृति विदेशियों के भयंकर आघातों को सहन करती हुई भी आज अक्षुण्ण है। इसका श्रेय भारत की सर्वप्राचीन भाषा संस्कृत को है जो आज भी भारतीय जन–जीवन को अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति सजग करती है। संस्कृत ही उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः, संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् जैसे उच्च आदर्शों से भारतवासियों को एकता के सूत्र में बाँधे हुए है। संस्कृत भाषा के प्राचीन कवियों की इसी विरासत को परवर्ती कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से अक्षुण्ण रखा है। दीक्षित जी ने भी अन्योक्तितरंगिणी के माध्यम से प्राचीन परम्परा को पुनर्जीवित करने में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया है। भारत का सर्वोच्च ताज़ हिमालय[1] और भारत की पवित्र नदी गंगा के माहात्म्य[2] का वर्णन कर कवि ने अपनी मातृभूमि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की है। अनेक पद्यों में कवि ने भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ जैसे – सज्जनता, परोपकारिता, दानशीलता, साम्यदृष्टि, सहिष्णुता, कुसंगति का परित्याग, विद्वज्जनों का आदर, अतिथिसत्कार, भाग्यवादिता, गुरु–महत्ता, गुरु–शिष्य सम्बन्ध आदि का सुन्दर चित्रण किया है।

सज्जनता तथा परोपकारिता भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। कवि ने सज्जनों के माहात्म्य का अतिसुन्दर प्रतिपादन किया है। सज्जन पुरुष सदैव दूसरों का उपकार करते हैं। दुष्टों द्वारा अपनी निन्दा एवं अहित किए जाने पर भी वे परोपकार करना नहीं छोड़ते हैं और दुष्टों के समान नीच कार्यों में प्रवृत्त नहीं होते हैं। जिस प्रकार कि हाथी कुत्तों के भौंकने पर भी चुपचाप चलता रहता है उसी तरह सज्जन व्यक्ति भी दुष्टों के क्रूर व्यंग्य–बाणों के प्रहार से किंचिन्मात्र भी विचलित हुए बिना अपने मार्ग में निरन्तर गतिशील रहते हैं।[3] सज्जन लोक में साक्षात् देवता के ही प्रतिरुप होते हैं। वे सदैव परहित में संलग्न रहते हैं। अन्योक्तितरंगिणीकार के अनुसार वे अपना अपमान किए जाने पर भी अपकारियों का भी उपकार ही करते हैं और लोककल्याण के लिए स्वयं संकटों का सामना करते हैं जिस तरह कि वृक्ष पत्थर से प्रहार करने पर भी फल प्रदान करता है और स्वयं आतपग्रस्त होकर भी पथिकों को छाया प्रदान करता है। यथा–

पादप! त्वमसि साधुगुणाढ्य–
स्ताडितोऽपि सुफलानि च दत्से।
छायया पथिकदुःखनिवृत्यै
मूर्ध्नि यद् वहसि घर्म सदैव।।
अन्योक्तितरंगिणी, 28

कवि ने हंस और सरोवर के व्याज से परोपकारी के प्रति कृतज्ञता का भी संदेश दिया है।[4]
भारतीय संस्कृति में दान का बड़ा महत्त्व है। दान देने से व्यक्ति को महान पुण्यों की प्राप्ति होती है। कवि के मत में सुपात्र एवं जरुरतमन्द व्यक्ति को दान देने से महान उपकार होता है।[5] सेमल वृक्ष के समान समृद्धिशाली का धन भी दान से रहित होने से निष्फल है।[6] मेघ के व्याज से अपात्र को दान देना निरर्थक बताया है।[7] पर्वत और समुद्र पर मेघ–वर्षण के समान ही धनिक और मूर्ख को दान देना व्यर्थ है। अन्त में श्लोक संख्या 96 में कल्पवृक्ष के व्याज से दाता को मूर्ख तथा विद्वानों के प्रति समान दृष्टि न रखने का संदेश दिया है।
'अतिथि देवो भवः' भारतीय संस्कृति में अतिथि को देवता तुल्य पूजनीय माना गया है। श्लोक संख्या 75 में वृक्षों के माध्यम से सज्जनों की अतिथि–सत्कार की प्रवृत्ति की प्रशंसा की गई है –

अरिष्टः कर्चूरः पथिकजनताया निजगुणैः
दिनान्ते याताया अतिथिसमपूजां विदधिरे।

अतिथि–सत्कार की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए पवन तुल्य निःस्पृही सन्यासियों, साधु–सन्तों का यथोचित सत्कार करने की प्रेरणा दी गई है।[8]
केवल भारतीय संस्कृति में ही भाग्य की अवधारणा दृष्टिगत होती है। पाश्चात्य संस्कृतियों में भाग्य पर विश्वास नहीं किया जाता है। व्यक्ति के जीवन में सुख–दुःख, उत्थान–पतन का कारण भाग्य है जो व्यक्ति के पूर्वकृत और वर्तमान कर्मों से बनता है। व्यक्ति भाग्य के अधीन है। भाग्य के अनुरुप ही उसे अधिक अथवा कम प्राप्त होता है। इसी तथ्य को कवि ने कुत्ते के माध्यम से याचक को लक्षित कर प्रस्तुत किया है–

पश्य कुक्कुर ! न भाग्य विधेस्ते किञ्चदप्यधिकमेष विधत्ते।
अन्योक्तितरंगिणी, 23

अन्यत्र भी भाग्य की बलवत्ता का दिग्दर्शन कराया गया है।[9]
अनेकता में एकता भारतीयसंस्कृति की प्रमुख विशेषता है। 'संहतिः कार्य–साधिका' – इस तथ्य के अनुरुप ही दीक्षित जी ने भी भ्रमर तथा चम्पक, जाति आदि लताओं के सम्मिलित प्रयासद्वारा वसन्तऋतु[10] के यशोवर्धन रुप कार्य के माध्यम से तथा पशु–विवाहोत्सव[11] में श्रृगाल और गीदड़ों के पारस्परिक सहयोग के माध्यम से मानव–समाज को पारस्परिक स्नेह, सद्भाव, भाईचारा तथा एकता का सन्देश दिया है।
भारतीय संस्कृति की उपरोक्त विशिष्टताओं के अतिरिक्त भी अन्यान्य विशेषताएं भी इस काव्य में दृष्टिगोचर होती है। जैसे कि कवि ने गुरु–शिष्य सम्बन्धों पर सुन्दर प्रकाश डाला है। गुरु कभी भी अपने प्रतिभाशाली शिष्य के वैदुष्य का आकलन नहीं करता है अपितु शिष्य ही गुरु के यश का अपनी प्रतिभा द्वारा सर्वत्र विस्तार करता है। इसे माली और यूथिका के वृतान्त द्वारा प्रतिपादित किया गया है।[12] श्लोक संख्या 26 में हंस के माध्यम से गुरु की महत्ता का उद्घाटन किया गया है। इसी प्रकार श्लोक संख्या 57, 63 और 65 में भ्रमर, मदमस्त हस्ति और नीमवृक्ष के माध्यम से राजाओं को विद्वज्जनों का समुचित आदर करने के लिए प्रेरित किया गया है। श्लोक संख्या 36 और 79 में वसन्त ऋतु और माली के व्याज से मानव समाज को साम्यदृष्टि और विश्वबंधुत्व की भावना का सदुपदेश दिया है। शतं समास्तिष्ठतु तादृशोनरः[13] उक्ति द्वारा कवि ने सज्जनों के शत वर्ष तक जीवित रहने की कामना कर ऋषियों के ''जीवेमः शरदः शतम्, पश्येमः शरदः शतम्'' इन उद्गारों के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त की है। इस प्रकार अन्योक्तितरंगिणी में भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्ब स्पष्ट झलकता है।

(ब) अन्तर्द्वन्द्व एवं मानव–व्यवहार का चित्रण

मानव के स्वभाव और चरित्र के अन्तर्विरोध और विसंगतियों को उद्घाटित करने के लिए कवि ने कहीं–कहीं वैषम्य–प्रदर्शन की शैली अपनाई है। उन्होंने या तो किसी एक ही वस्तु की विरोधी प्रवृत्तियों का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है या दो भिन्न वस्तुओं अथवा प्राणियों के स्वभाव और गुणों की तुलना करते हुए उनके व्यावहारिक वैषम्य को स्पष्ट किया है। उदाहरणार्थ समुद्र[14] की समृद्धि और महिमा का वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि रत्नों से परिपूरित, रम्भा का जनक, हरि का निवास–स्थल, लक्ष्मी एवं सुधा को उत्पन्न करने वाला समुद्र भी यदि प्यासे व्यक्ति की प्यास नहीं बुझा सकता है तो ऐसी दिखावटी समृद्धि और महिमा ही व्यर्थ है। कवि का आशय यह है कि समृद्धिशाली व्यक्ति यदि कृपण है तो उसकी समृद्धि किस काम की। इसी प्रकार चन्दन[15] को शीतल, पूजनीय और देवताओं का प्रिय किन्तु सर्पधारी बनाकर साधुजनों द्वारा अनादृत वर्णित किया गया है। यहाँ कवि का अभिप्राय यह है कि गुणसंपन्न पुरुष भी कुसंगतिग्रस्त होने पर सदैव तिरस्कृत होते हैं।
हाथी और कुत्ते की स्वाभाविक प्रवृत्ति का तुलनात्मक चित्रण करते हुए कवि ने बताया है कि हाथी पुनः पुनः फुसलाने, सहलाने और पुचकारने पर ही खाता है जबकि कुत्ता अनादरपूर्वक एक बार देने पर ही खा लेता है। इसी तरह सज्जन स्वभाव से ही गंभीर, निःस्पृही, सहिष्णु, स्वाभिमानी एवं महान् होते हैं जबकि दुर्जन स्वभाव से ही अपकारी, दुराचारी, अनुदार, विनाशकारी और नीच प्रवृत्ति के होते हैं अतः इनका सदैव तिरस्कार होता है।
यथा –

हन्त! दन्तिमृगदंशकभेदं भावयस्व मनसा परिचिन्त्य।
अत्ति चाटुकृतिभिर्ननु दन्ती रीढयैव लभते तु तदन्यः।।[16]

बबूल और वटवृक्ष[17] का तुलनात्मक वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि काँटेदार, फल और छाया से रहित बबूल वृक्ष के समान दुष्ट व्यक्ति दान, दयादि गुणों से शून्य होते हैं, वे किसी का उपकार नहीं करते जबकि विशालकाय, छायादार वटवृक्ष के समान सज्जन व्यक्ति सदैव दान, दया, दाक्षिण्य, क्षमा आदि गुणों द्वारा दूसरों को सुख प्रदान करते हैं।
इस प्रकार मानव–व्यवहार के विविध रुपों को उद्घाटित करते हुए कवि ने मानव–स्वभाव की विसंगतियों को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अन्योक्तितरंगिणी मात्र काव्य ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति, समाज और लोकजीवन का चित्रण करने वाला दर्पण भी है। इस काव्य में कवि ने अन्योक्तियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति की उदात्त अवधारणाओं को सरलतम रुप में प्रस्तुत कर पुरातन सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाए रखने में अपना अमूल्य योगदान दिया है। प्रकृति जगत् के उपादानों का अप्रस्तुत विधान के रुप में प्रयोग करते हुए कवि ने लोक व्यवहार, मानव–स्वभाव और मानवीय प्रवृत्तियों का यथातथ्य चित्रण किया है। निःसन्देह यह काव्य मानव में आपसी सहयोग, सद्भाव, प्रेम, एकता, कर्त्तव्यपरायणता और मानवीयता की भावना जागृत करता है अतएव भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणास्त्रोत है।

सन्दर्भ

1. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 74
2. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 87, 88
3. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 7
4. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 76
5. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 32

6. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 16
7. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 93
8. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 71
9. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 34, 35, 59
10. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 54
11. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 90
12. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 53
13. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 84
14. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 38
15. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 85
16. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 24
17. अन्योक्तितरंगिणी श्लोक संख्या – 72